भारतीय ज्ञान परंपरा

संस्कृति, दर्शन, शैक्षिक विचारधाराएँ और नवाचार

सम्पादक :
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय ज्ञान परंपरा :
संस्कृति, दर्शन, शिक्षा विचारधाराएँ और नवाचार

सम्पादक :
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा
Ph.D., D.Lit. (Sub.)
निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

छवि पब्लिकेशन्स
अजमेर-305001

प्रकाशक :
छवि पब्लिकेशन्स
अजमेर-305001
मो. 9660111549

संस्करण :
प्रथम 2022-2023

ISBN : 978 - 81 - 89435 - 64 - 6

मूल्य - 300/-

रचना - भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

मुद्रक - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

28. राजस्थान की लोक कलाएं

राकेश कुमार माली
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

राजस्थान भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में स्थित वह प्रदेश है जिसकी रेत, रंग, राग और रस की परंपरा अनादि काल से विश्व में प्रसिद्ध रही है। यहाँ का हर कण संस्कृति की सुगंध से परिपूर्ण है। मरुस्थल की इस भूमि ने जिस प्रकार वीरता, त्याग, प्रेम और भक्ति की परंपरा को जन्म दिया, उसी प्रकार लोककला के विविध रूपों को भी जन्म दिया है। राजस्थान की लोककलाएँ इस प्रदेश की आत्मा हैं, जिनमें लोकजीवन की अनुभूति, सौंदर्य-बोध, भक्ति-भाव, सामाजिक एकता और पारंपरिक ज्ञान का अद्भुत संगम दिखाई देता है।

लोककलाएँ किसी समाज की संस्कृति का दर्पण होती हैं। वे केवल मनोरंजन का साधन नहीं बल्कि समाज की चेतना, उसकी जीवन-दृष्टि और लोकानुभव की अभिव्यक्ति होती हैं। राजस्थान की लोककलाएँ इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे इस प्रदेश की विविध भौगोलिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का सजीव प्रतिबिंब प्रस्तुत करती हैं। यहाँ की लोककला में रेगिस्तान की रेत का विस्तार, ऊँटों की चाल की लय, लोकगीतों की मिठास, वस्त्रों के रंग और चित्रों की सौम्यता का सुंदर समन्वय दिखाई देता है।

लोककला उस कला को कहा जाता है जो किसी प्रदेश के सामान्य जनजीवन से उत्पन्न होती है। इसका संबंध अभिजात वर्ग की शिक्षित और दरबारी कला से नहीं बल्कि उस कला से है जो समाज के श्रमजीवी वर्ग की सृजनात्मक प्रवृत्ति से जन्म लेती है। लोककला मौलिकता, सरलता, सामूहिकता और उपयोगिता के गुणों से युक्त होती है। यह न किसी कलाकार की व्यक्तिगत कल्पना होती है, न किसी आदेश या पुरस्कार का परिणाम। यह लोक-भावनाओं की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।

राजस्थान की लोककला का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। सिंधु सभ्यता के अवशेषों में जो मिट्टी की मूर्तियाँ, मोतियों के हार, धातु की वस्तुएँ, मिट्टी के पात्र और दीवार चित्र मिलते हैं, वे इस बात का प्रमाण हैं कि इस क्षेत्र में लोककला की परंपरा

हजारों वर्षों से विद्यमान रही है। वैदिक काल में यज्ञों के समय जो वेदियों, मण्डपों और वेषभूषाओं की रचना होती थी, उनमें भी लोककला की छाप स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

मौर्य, गुप्त, प्रतिहार, चौहान, सिसोदिया, राठौड़ आदि राजवंशों के शासनकाल में लोककलाओं को संरक्षण मिला। राजाओं ने कलाकारों, कारीगरों और शिल्पियों को प्रोत्साहन दिया। साथ ही, आम जनता ने अपनी परंपरा और भावनाओं को बनाए रखने के लिए लोककलाओं को पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित रखा। इस प्रकार, राजस्थान की लोककलाएँ दरबारी और लोक दोनों परंपराओं के संगम से विकसित हुईं।

राजस्थान की लोक संस्कृति का आधार

राजस्थान की लोक संस्कृति धर्म, प्रकृति और समाज के त्रिवेणी संगम से बनी है। यहाँ के लोकगीतों में जहाँ प्रेम और विरह की करुणा गूँजती है, वहीं लोकनृत्यों में उल्लास और जीवन की उमंग छलकती है। यहाँ की चित्रकला में देवी-देवताओं की भक्ति झलकती है और हस्तशिल्प में श्रम और सौंदर्य का संतुलन दृष्टिगोचर होता है।

राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों — जैसे मेवाड़, मारवाड़, शेखावाटी, जयपुर, हाड़ौती, बाड़मेर, बीकानेर, जैसलमेर, बूंदी, कोटा आदि में लोककलाओं के स्वरूप में भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार भिन्नता मिलती है, परंतु उनकी आत्मा एक ही है — लोकजीवन का उत्सव और आध्यात्मिकता।

लोक चित्रकला

राजस्थान की लोक चित्रकला अपनी मौलिकता, रंग-संयोजन और धार्मिक भावनाओं के लिए प्रसिद्ध है। इसमें प्रमुख रूप से फड़ चित्रकला, मंडाना, भील चित्र, मेवाड़-बूंदी की लघु चित्रकला, एवं पिछवाई चित्र शामिल हैं।

फड़ चित्रकला :- फड़ चित्रण रेजी या खादी के कपड़े पर लोकदेवताओं की जीवन गाथाओं, धार्मिक और पौराणिक कथाओं, तथा ऐतिहासिक घटनाओं को चित्रित करने की परंपरा है। शाहपुरा, जो भीलवाड़ा जिले में स्थित है, इस कला का मुख्य केन्द्र माना जाता है। फड़ चित्रण में लोकनाट्य, लोकसंगीत, मौखिक साहित्य और चित्रकला का अनूठा संगम देखने को मिलता है। फड़ की लंबाई आमतौर पर अधिक और चौड़ाई कम होती है। इसमें लाल और हरे रंग का प्रतीकात्मक प्रयोग भावाभिव्यक्ति में विशेष सहायता प्रदान करता है। पांचाजी जोशी ने लगभग सात सौ वर्ष पूर्व मेवाड़ में फड़ चित्रकला को विकसित किया और बाद में उनके शिष्य श्रीलाल जोशी ने इस कला को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाई। फड़ चित्रकला में मुख पात्रों की वेशभूषा लाल और खलनायकों की वेशभूषा हरे रंग में दर्शाई जाती है। फड़ चित्रों का वाचन भोपों द्वारा किसी विशेष अवसर पर, प्रायः रात में किया जाता है। पाबूजी की

फड़, देवनारायणजी की फड़ और रामदेवजी की फड़ इस शैली की प्रमुख उदाहरण हैं। पाबूजी को प्लेग और ऊँटों के रक्षक देवता के रूप में पूजा जाता है। देवनारायणजी की फड़ सबसे लंबी, पुरानी और चित्रों की दृष्टि से समृद्ध मानी जाती है, जिसकी एक प्रति जर्मनी के संग्रहालय में संरक्षित है। रामदेवजी की फड़ मुख्यतः मेघवाल, कोली और चमार जातियों में लोकप्रिय है और इसका चित्रण चौथमल चितेरे द्वारा आरंभ किया गया था।

पाने :- फड़ चित्रकला के अतिरिक्त राजस्थान में कागज पर बनाई जाने वाली पाने की कलाएँ भी अत्यंत प्रसिद्ध हैं। ये पाने देवी-देवताओं के चित्र होते हैं जिन्हें विभिन्न पर्वों, त्यौहारों और मांगलिक अवसरों पर प्रतिष्ठित किया जाता है। इनमें गणेश, लक्ष्मी, रामदेव, गोगाजी, श्रवण कुमार, राम-कृष्ण और श्रीनाथजी के चित्र प्रमुख हैं। श्रीनाथजी के पाने में 24 प्रकार के शृंगारों का चित्रण होता है, जो अत्यंत कलात्मक और विस्तृत होते हैं।

मांडणा :- राजस्थान की लोककलाओं में मांडणा एक और महत्वपूर्ण परंपरा है, जिसमें महिलाएँ घरों और आँगनों की दीवारों पर मिट्टी, चूना, खड़िया, हिरमिच और गैरुं के माध्यम से ज्यामितीय और प्राकृतिक आकृतियाँ अंकित करती हैं। यह कला मुख्यतः विवाह, जन्म और त्योहारों के अवसर पर बनाई जाती है। मांडणा का उद्देश्य घर में समृद्धि और शुभता का संचार करना होता है। विभिन्न क्षेत्रों में मांडणा के विभिन्न नाम हैं जैसे गुजरात में सातियाँ, महाराष्ट्र में रंगोली, बंगाल में अल्पना, उत्तरप्रदेश में चौकपूरना, तेलंगू में मोगु और तमिलनाडु में कोलम। मांडणा की सबसे छोटी इकाई स्वास्तिक होती है, जो गणेशजी का प्रतीक माना जाता है।

साँझी :- साँझी राजस्थान की एक अत्यंत रंगीन लोककला है, जिसे मुख्यतः कुंवारी कन्याएँ आश्विन माह में बनाती हैं। इस परंपरा में दीवारों पर गोबर, आटा, हल्दी और कौड़ियों से जटिल चित्रांकन किया जाता है। नाथद्वारा और उदयपुर के मंदिर इस कला के प्रसिद्ध केन्द्र हैं। साँझी की आकृतियों में फूल, पत्ते, पंखा, हुक्का और ढोलक जैसी वस्तुएँ भी चित्रित की जाती हैं।

कावड़ :- राजस्थान में कावड़ भी लोककलाओं का महत्वपूर्ण रूप है। यह मंदिरनुमा काष्ठकला होती है, जिसमें देवी-देवताओं की कथाएँ और धार्मिक प्रसंग चित्रित होते हैं। चित्तौड़गढ़ के बस्सी गाँव में कावड़ निर्माण के लिए खेरादी जाति के कलाकार विख्यात हैं।

भील चित्र और गरासिया चित्र आदिवासी अंचलों की मौलिक कलाएँ हैं, जिनमें आकृतियाँ सरल लेकिन जीवंत होती हैं। इन चित्रों में स्थानीय देवी-देवताओं और लोककथाओं के दृश्य अंकित किए जाते हैं।

राजस्थान की लघु चित्रकलाएँ

राजस्थान की लघु चित्रकला दरबारी कला होते हुए भी लोकप्रेरणा से ओत-प्रोत है। यह 16वीं से 19वीं शताब्दी के मध्य सर्वाधिक विकसित हुई। मेवाड़, बूंदी, किशनगढ़, बीकानेर, जयपुर और मारवाड़ में इसकी विशिष्ट शैलियाँ विकसित हुईं।

मेवाड़ शैली में रंगों की चमक और भक्ति भावना का सशक्त चित्रण मिलता है। श्रीकृष्ण लीला, रामायण, भगवद् कथा, और स्थानीय उत्सवों के दृश्य इसमें विशेष स्थान रखते हैं।

बूंदी शैली प्राकृतिक दृश्यों के लिए प्रसिद्ध है — झरने, बादल, बाग-बगीचे, और नतर्ज़कियों के समूह इसके मुख्य विषय हैं।

किशनगढ़ शैली में भावनात्मक सौंदर्य का चरम है। इस शैली की 'राधा' चित्रित आकृति भारतीय चित्रकला की अमर प्रतीक बन गई।

लोक नृत्य

राजस्थान के लोकनृत्य इसकी जीवंत संस्कृति के प्रतीक हैं। यहाँ के प्रत्येक क्षेत्र का अपना नृत्य रूप है। मेवाड़ में घूमर, मारवाड़ में गैर, जैसलमेर में कालबेलिया, अजमेर में चरी, और पुष्कर में तेरह-ताल नृत्य प्रसिद्ध हैं।

घूमर नृत्य स्त्रियों द्वारा किया जाने वाला सबसे लोकप्रिय नृत्य है, जिसमें रंग-बिरंगे घाघरे घूमते हुए सुंदर गोलाकार आकृति बनाते हैं। इसका नाम ही 'घूमर' उसी घूमने की मुद्रा से पड़ा है।

कालबेलिया नृत्य सपेरा समुदाय की स्त्रियों द्वारा किया जाने वाला नृत्य है, जिसमें शरीर की लचक और लय अद्भुत होती है। यह सांप के लहराते हुए गतिशील रूप की याद दिलाता है।

चरी नृत्य में नर्तकियाँ सिर पर दीयों से भरे पात्र रखकर संतुलन और ताल का अनोखा प्रदर्शन करती हैं।

गैर नृत्य पुरुषों द्वारा होली पर्व पर किया जाने वाला नृत्य है, जिसमें लाठियों की ताल और जोश से वातावरण गुंजायमान हो उठता है।

इन नृत्यों में धार्मिक, सामाजिक और सौंदर्यात्मक तीनों ही तत्व उपस्थित होते हैं। इनका उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं बल्कि लोकसमाज के सामूहिक उत्सव की भावना को प्रकट करना है।

लोक संगीत

राजस्थान का लोक संगीत अनंत भावनाओं का सागर है। यह वीरता, भक्ति, प्रेम और विरह के स्वर में रचा-बसा है। यहाँ का संगीत शुष्क मरुस्थल में भी रस की धारा प्रवाहित करता है।

राजस्थान के प्रमुख लोकगायक समुदाय हैं — मांगणियार, लंगा, भाट, ढोली, भोपे आदि। ये पीढ़ियों से संगीत साधना में रत हैं। मांगणियार और लंगा मुसलमान समुदाय से हैं, परंतु उनके गीतों में हिन्दू देवी-देवताओं की स्तुतियाँ भी मिलती हैं — यह सांप्रदायिक सद्भाव का अनुपम उदाहरण है।

प्रमुख वाद्य यंत्रों में कमायचा, सरंगी, ढोलक, मंजीरा, एकतारा, आलगोजा, और नाळ प्रमुख हैं। लोकगीतों के प्रकार हैं — बन्ना-बन्नी गीत (विवाह प्रसंग), सोहर (जन्म उत्सव), वीर गीत, भक्तिगीत, झूलना, गौरमाता के गीत, और बधावे।

काष्ठ कला एवं अन्य कलाएं

कठपुतली कला :- कठपुतली कला राजस्थान की अत्यंत प्राचीन लोककला है। उदयपुर, चित्तौड़गढ़ और जयपुर कठपुतली निर्माण के प्रमुख केन्द्र हैं। नट या भाट जाति के कलाकार कठपुतलियों का निर्माण करते हैं। कठपुतली लकड़ी की अरडू जाति से बनाई जाती है और इसके प्रदर्शन में नृत्य, संगीत और कथावाचन का समन्वय होता है। प्रसिद्ध कठपुतली नाटकों में राजा विक्रमादित्य की सिंहासन बतीसी, पृथ्वीराज संयोगिता और नागौर के अमरसिंह राठौड़ का खेल, पाबूजी की कथा, पृथ्वीराज चौहान की वीरगाथा शामिल हैं। कठपुतली के चार प्रकार प्रचलित हैं: दस्ताना, छड़, छाया और धागा या सूत्र पुतली। इसमें लकड़ी की बनी छोटी-छोटी गुड़िया (पुतलियाँ) रंग-बिरंगे वस्त्रों में सजाई जाती हैं और डोरियों से संचालित की जाती हैं।

काष्ठ कलाकृतियाँ :- काष्ठ राजस्थान की लोककला में काष्ठ कलाकृतियाँ भी विशेष महत्त्व रखती हैं। चौपड़े, बाजोट, बेवाण, छापे, खांडे, पातरे-तिपरणी और तोरण जैसी कलाकृतियाँ विवाह और धार्मिक अवसरों में प्रयुक्त होती हैं। चौपड़े पूजा और विवाह के समय, बाजोट भोजन और पूजा में, बेवाण देव झूलनी के रूप में, छापे कपड़े पर छपाई के लिए, खांडे होली के अवसर पर, पातरे-तिपरणी जैन साधुओं के प्रयोग में और तोरण विवाह के समय प्रवेश द्वार पर सजावट हेतु बनाई जाती हैं।

राजस्थान की अन्य लोक कलाओं में अंग-सजावट कला भी महत्वपूर्ण है। गोदना और मेहंदी जैसे रूपों में शरीर को सजाने की परंपरा प्रचलित है। गोदना कला विशेष रूप से जनजातियों में प्रचलित है, जबकि मेहंदी मुख्यत: महिलाओं के सौंदयज़ प्रसाधन और विवाह, मंगल अवसरों पर प्रयोग की जाती है। सोजत (पाली) की मेहंदी प्रसिद्ध है और इसके हरे रंग को समृद्धि तथा लाल रंग को प्रेम और सौभाग्य का प्रतीक माना जाता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में मिट्टी और प्राकृतिक संसाधनों से बनी कलाकृतियाँ भी लोककलाओं का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। पथवारी, वील, देवरे, थापे, पिछवाई, बटेवड़े, सोहरियाँ, ओका-नाका-गुणा, मोण, भराड़ी, घोड़ा बावसी, हीड़ और कोठियां जैसी

कलाकृतियाँ न केवल ग्रामीण जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करती हैं बल्कि धामिज़्क, सांस्कृतिक और सौंदयज़ पक्ष का भी प्रतिनिधित्व करती हैं। इन कलाओं के माध्यम से ग्रामीण समाज अपनी आस्था, उत्साह और जीवन शैली को अभिव्यक्त करता है।

राजस्थान की लोककलाओं में सूत कातने का चरखा, गोरबन्द, राई के दाने पर चित्रांकन और क्लोथ आर्ट जैसी कलाएँ भी शामिल हैं। ये कलाएँ न केवल सौंदर्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं बल्कि कलाकारों के आर्थिक जीवन और समाज की सांस्कृतिक पहचान में भी योगदान देती हैं।

हस्तशिल्प कला

राजस्थान की हस्तशिल्प कला उसकी पहचान है। यहाँ के कलाकार अपने हाथों से मिट्टी, पत्थर, धातु, लकड़ी, वस्त्र, चमड़ा, काँच, हड्डी और दर्पण से अद्‌भुत वस्तुएँ बनाते हैं।

नीली पॉटरी (जयपुर) — सफेद मिट्टी पर नीले-हरे रंगों की ग्लेज़्ड कलाकारी, फ़ारसी प्रभाव से विकसित।

ब्लॉक प्रिंटिंग (सांगानेर, बगरू) — लकड़ी की छपाई द्वारा वस्त्रों पर मनोहर आकृतियाँ।

बाँधनी और लहरिया वस्त्र — रंगों और रेखाओं की लहरों से सुसज्जित वस्त्र, जो राजस्थान की पहचान हैं।

धातु कला (उदयपुर, बीकानेर) — पीतल, ताम्बे और चाँदी पर नक्काशी।

चमड़े की कारीगरी (जोधपुर, बिकानेर) — जूते, मोजड़ी, और सजावटी वस्तुएँ।

काँच की चूड़ियाँ (जयपुर) — महिलाओं की साज-सज्जा का अभिन्न अंग।

स्थापत्य कला और लोक रूप

राजस्थान की स्थापत्य कला में लोककला का अदुभुत समावेश है। यहाँ के किले, महल, हवेलियाँ, छतरियाँ और मंदिर केवल राजसी वैभव के प्रतीक नहीं बल्कि लोक शिल्प के उत्कृष्ट नमूने हैं।

जैसलमेर किला, मेहरानगढ़ दुर्ग, चित्तौड़गढ़, अंबर महल, सिटी पैलेस जयपुर, हवामहल, झालावाड़ की छतरियाँ — इन सभी में पत्थर की नक्काशी, झरोखों की बनावट, रंगीन काँच और फ्रेस्को पेंटिंग लोकशिल्प की झलक दिखाते हैं। शेखावाटी क्षेत्र की हवेलियों की दीवारों पर बनी चित्रकला 'ओपन-एयर आर्ट गैलरी' कहलाती है।

लोक उत्सव और मेले

राजस्थान के लोक उत्सवों में लोककलाओं का जीवंत प्रदर्शन होता है। पुष्कर मेला, मरु उत्सव (जैसलमेर), गोगाजी मेला, तीज, गणगौर, होली, दीपावली, जागरण, भादवा महोत्सव — इन सभी में लोकनृत्य, लोकसंगीत और लोकशिल्प की झलक मिलती है।

आर्थिक और सांस्कृतिक महत्व

लोककलाएँ न केवल सांस्कृतिक धरोहर हैं, बल्कि आजीविका का स्रोत भी हैं। राजस्थान में हजारों कारीगर इन कलाओं से जुड़कर अपने परिवार का पोषण करते हैं। सरकार और गैर-सरकारी संस्थाएँ इन कलाओं को बढ़ावा देने हेतु कार्य कर रही हैं।

पर्यटन उद्योग में लोककलाओं का महत्त्व अत्यधिक है। विदेशी पर्यटक राजस्थान की चित्रकला, वस्त्र, नृत्य और संगीत से अत्यंत प्रभावित होते हैं। इससे न केवल कला का प्रचार होता है, बल्कि राज्य की अर्थव्यवस्था को भी बल मिलता है।

आधुनिक युग में यांत्रिकता और व्यावसायिकता के बढ़ते प्रभाव के कारण लोककलाओं के समक्ष अनेक चुनौतियाँ उत्पन्न हो गई हैं। नई पीढ़ी का पारंपरिक व्यवसायों से विमुख होना, सस्ते औद्योगिक उत्पादों का बाजार में आना, तथा सरकारी उपेक्षा जैसी समस्याएँ इन कलाओं के अस्तित्व पर खतरा बन गई हैं।

फिर भी कुछ संस्थाएँ — जैसे राजस्थान लोककला मंडल (उदयपुर), रूपायन संस्थान (जोधपुर), शिल्पग्राम, तथा राजस्थान पर्यटन विभाग — इन कलाओं के संरक्षण में सक्रिय हैं।

निष्कर्षत: राजस्थान की लोककलाएँ केवल कला नहीं, बल्कि एक जीवंत परंपरा हैं जो समाज के प्रत्येक वर्ग को जोड़ती हैं। इनमें राजस्थान की मिट्टी की महक, लोकगीतों की मिठास, नृत्यों की लय, वस्त्रों के रंग और कलाकारों का श्रम सम्मिलित है। ये कलाएँ इस प्रदेश की आत्मा हैं, जो लोकजीवन की सादगी, भक्ति, सौंदर्य और आनंद को एक सूत्र में बाँधती हैं।

राजस्थान की रेत में खिलने वाले रंग-बिरंगे फूलों की तरह, लोककलाएँ भी इस प्रदेश की संस्कृति को सदा महकाती रहें, यही इनका सच्चा उद्देश्य और गौरव है।

❑❑❑